सृजनशील शिक्षण

अरविन्द गुप्ता

दो साल पहले शिक्षकों की एक राष्ट्रीय कार्यशाला हुई। वहां पर शिक्षकों से एक प्रश्न पूछा गया, 'आपने अपने जीवन में किस वर्ष में सबसे अधिक सीखा?' सवाल पूर्णत: वैयक्तिक था। प्रश्न शिक्षकों के ज्ञान भंडार या उनकी कुशलताओं को परखने के लिए नहीं पूछा गया था। कुछ देर बाद एक महिला ने उत्तर दिया, 'जब मैं नवीं कक्षा में थी तब हमें एक विलक्षण विज्ञान शिक्षका ने पढ़ाया। वो अक्सर हमें विज्ञान प्रयोगशाला में ले जाती और प्रयोग करके दिखातीं। उन्होंने हमें ऑक्सीजन गैस का निर्माण करना दिखाया। वो हमें प्रयोगशाला के अन्य उपकरणों से खेलने देती थीं। शायद इसी अनुभव के कारण मेरी विज्ञान में रुचि पैदा हुई। उस समय मेरी उम्र कोई पंद्रह वर्ष की होगी।'

एक अन्य टीचर ने कहा, 'पहले मैं बहुत शर्मीला था और बोलने से झिझकता था। पर जब मैं बी एड कर रहा था उस समय एक बहुत अच्छे शिक्षक मिले। उन्होंने मुझे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित किया और शिक्षा पर कुछ बेहतरीन पुस्तकें पढ़ने को दीं – इनमें 'दिवास्वप्न' और 'तोत्तोचान' का मुझ पर अत्यंत प्रभाव पढ़ा। इन किताबों ने मेरे लिए एक नई दुनिया खोली। पहली बार मैं एक सच्चे शिक्षक के मर्म को समझ पाया। इन समृद्ध अनुभवों के कारण ही बाद में मैं स्वयं एक अच्छा शिक्षक बन पाया। उस समय मैं 22 साल का होऊंगा।'

दोनों शिक्षकों के उत्तर एकदम स्पष्ट थे। शायद यह जवाब सीधे उनके दिल से निकले थे। वो अपने जीवन के प्रेरक क्षणों को जी रहे थे और अपने विलक्षण शिक्षकों की स्तुति कर रहे थे। परंतु शायद वो प्रश्न को अच्छी तरह समझे नहीं थे। उनके उत्तर सच्चाई से बहुत दूर थे। प्रश्न साफ था – 'आपने अपने जीवन के किस साल में सबसे अधिक सीखा?' शिक्षक और पालक इस सच्चाई को बहुत जल्दी भूल जाते हैं कि बच्चे के शुरुआती साल उसके जीवन में सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। पैदा होते ही हम अनेक बिम्बों, ध्वनियों, खुशबुओं आदि को सोखना शुरू कर देते हैं। जो भी वस्तु सामने आती है, हम उसे छूते, उठाते-पटकते, चखते और फेंकते हैं। छोटे बच्चे दुनिया में बिल्कुल नए होते हैं और वो इस इस अजीबो-गरीब दुनिया को समझने का भरसक प्रयास करते हैं।

यह बात एकदम साफ है – हम जीवन के पहले साल में सबसे ज्यादा सीखते हैं। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हमारे सीखने की क्षमता क्षीण होती जाती है। बाकी शरीर के सेल्स मरते रहते हैं और पुन: बनते रहते हैं परंतु मस्तिष्क के सेल्स (न्यूरॉन्स) के साथ ऐसा नहीं होता। हमें पूरे जीवन के लिए न्यूरॉन्स का स्टॉक जन्म के समय ही मिलता है। उसके बाद धीरे-धीरे करके न्यूरॉन्स का क्षय ही होता है, पुन:निर्माण कभी नहीं होता।

किसी भी बात को समझने से पहले बच्चों को अनुभव की जरूरत होती है। अनुभव में चीजों को देखना, छूना, सुनना, चखना, सूंघना, चुनना, चीजों को एक खास क्रम में सजाना शामिल होता है। बच्चों के लिए ठोस चीजों से खेलना और प्रयोग करना एकदम अनिवार्य है। इसके लिए सबसे बेहतर शैक्षणिक सामग्री वही होगी जो पहले से ही बच्चे के परिवेश में मौजूद होगी। बच्चों को अलग-अलग चीजों को काटने, छांटने, जोड़ने का मौका मिलेगा तो बहुत अच्छा होगा। इन समृद्ध ठोस अनुभवों द्वारा वो जो कुछ सीखेंगे उससे बाद में उनके लिए अमूर्त मान्यताओं और कल्पनाओं को समझना आसान हो जाएगा। बच्चे किस तरह सीखते हैं इस बारे में तमाम अग्रणी शिक्षाविद् एकमत हैं – पास से दूर की ओर, ठोस वस्तुओं से अमूर्त की ओर।

सभी छोटे बच्चों को कागज फाड़ने में बड़ा मजा आता है। अखबार के कागज का भी एक ताना-बाना होता है। अखबार फाड़तें समय एक दिशा में तो लंबी-लंबी लगभग समानांतर पट्टियां आसानी से फट जाती हैं, परंतु लंबवत दिशा में केवल छोटी पट्टियां ही फटती हैं। ऐसा क्यों? अखबार के कागज के निर्माण के समय उसके रेशों को इस प्रकार फैलाया जाता है जिससे एक दिशा में कागज दूसरी दिशा के अपेक्षा अधिक मजबूत हो। यह कागज का 'आंतरिक नियम' है। इस नियम को बाहर से नहीं थोपा गया है। बच्चे चीजों की इन बारीकियों को अपनी उंगलियों से महसूस करते हैं और दिमाग में जब्ज करते हैं।

जिस कक्षा में 'लेक्चर' की बजाए गतिविधियां होती हैं वहां पर शिक्षक को मूल्यांकन बहुत कम करना पड़ता है। उदाहरण के लिए कागज की एक पट्टी के सिरों को आधी दूरी तक काटकर, उन्हें एक-दूसरे में फंसाकर एक 'उड़ने-वाली मछली' बनाई जा सकती है। सब बच्चों को इसे बनाने में मजा आता है। मछली गोल-गोल घूमती हुई नीचे को आती है। अगर किसी बच्चे की मछली अच्छी तरह नहीं घूमी तो बिना किसी टीचर के टोके बच्चे को खुद ही पता चल जाएगा कि उससे कहां गलती हुई

है। और वो तुरंत उसे सुधारने में लग जाएगा।

शक्षकों का दावा कि वे बच्चों को 'सिखाते' हैं उनके वयस्क अहम का द्योतक है। वास्तविकता इससे भिन्न है। बच्चे बहुत कुछ बिना सिखाए ही सीख जाते हैं। 'बोलना' या 'अभिव्यक्ति' एक अत्यंत कठिन और विलक्षण क्षमता है जिसे हरेक बच्चा बिना स्कूल गए ही स्वाभाविक तौर से सीख जाता है। बच्चों की अगर किसी चीज में रुचि होती है तो वे उसमें अपना पूरा दिल लगा देते हैं।

मारिया मांटेसरी के प्रयोगों ने इस बात को सौ वर्ष पहले दिखाया था। मांटेसरी इटली की पहली महिला मेडिकल डाक्टर थीं। उन्होंने झुग्गी-झोपड़ियों के गरीब बच्चों के साथ काम करना शुरू किया। मांटेसरी सारी दुनिया में अपने गहरे शैक्षणिक चिंतन के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने बच्चों के सीखने के लिए सैकड़ों शैक्षणिक साधन डिजाइन किए। उनमें से कई तो आज भी इस्तेमाल किए जाते हैं - मिसाल के लिए पोस्ट-बॉक्स। यह एक खोखला, घनाकार डिब्बा होता है। डिब्बे की प्रत्येक सतह पर कोई एक ज्यामिति की आकृति - जैसे गोला, त्रिकोण, वर्ग आदि कटी होती है। इन्हीं आकृतियों से मिलते-जुलते लकड़ी के ठोस गुटके होते हैं। इन गुटकों को, उनसे ही मिलते आकार वाले खांचों में 'पोस्ट' करना होता है। मिसाल के लिए, लकड़ी की गेंद को गोल छेद में और प्रिज्म को त्रिकोणाकार खांचे में डालना होता है।

एक उमरदराज पादरी थे जो मांटेसरी के काम में बहुत रुचि रखते थे। वो हर रविवार को मांटेसरी के प्रयोगों को देखने के लिए आते थे। एक दिन जब वो आए तो मांटेसरी उन्हें कक्षा के एक कोने में ले गयीं। वहां पर एक चार साल की बच्ची पोस्ट-बॉक्स से खेल रही थी। बच्ची अपने खेल में एकदम खोई हुई थी। जिससे की उस लड़की के खेल में कुछ बाधा पड़े, इसके लिए मांटेसरी ने बाकी बच्चों से उसके चारों ओर एक गोला बनाकर, जोर-जोर से गाना गाने को कहा। परंतु वो बच्ची अपने काम में इतनी मगन थी कि उसने सिर उठाकर भी नहीं देखा। कुछ देर बाद मांटेसरी ने उस बच्ची को उठाया और उसे एक मेज पर बिठा दिया। मेज पर बैठते ही बच्ची दुबारा अपने खेल में पूरी तरह व्यस्त हो गयी। वो बस इस सोच में खोई थी कि कौन सा गुटका कौन से खांचे में जाएगा। उसे अपने आसपास की दुनिया की कुछ भी सुधबुध नहीं थी।

पादरी महोदय एक अच्छे इंसान थे और वे अक्सर बच्चों के लिए कुछ टॉफी, चाकलेट आदि ले आते थे। उस दिन वो एक बिस्किट का डिब्बा लाए थे। उन्होंने सब बच्चों को बिस्किट बांटने शुरू किए। उन्होंने उस छोटी बच्ची को भी एक बिस्किट दिया। बच्ची ने बड़े ही अनमने भाव से बिस्किट को देखा। उसने देखा कि बिस्किट की आकृति आयताकार है, इसलिए उसने झट से बिस्किट को पोस्ट-बॉक्स के आयताकार खांचे में डाल दिया।

बच्चे कभी भी घूस और रिश्वत से नहीं सीखते। वे इसलिए सीखते हैं क्योंकि वे दुनिया को समझना चाहते हैं। दुनिया को समझने का जो असली आनंद है उसे मार्कशीट, सर्टिफिकेट, मैडल और पुरस्कार कभी पूरा नहीं कर सकते हैं।